राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एकलपीठ सिविल द्वितीय अपील संख्या 113/2010

कालीचरण पुत्र श्री सोहन लाल, एएमसी संख्या 866/25, पहाड़गंज, अजमेर (मृत) विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से।

1. उमेश सी. शर्मा, स्टेशन अधीक्षक सेवानिवृत्त, पश्चिम रेलवे, अजमेर (मृत) विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से।

1/1. विक्रांत शर्मा, पत्नी स्वर्गीय श्री उमेश शर्मा,

1/2. श्रीमती उमेश शर्मा पत्नी स्वर्गीय श्री उमेश शर्मा, 16, कैलाश पार्क कॉलोनी, गीता भवन, इंदौर।

2. चुन्नी लाल पुत्र श्री कालीचरण, मकान संख्या 866/25-845/25, पहाडगंज, अजमेर।

----अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण

बनाम

1. मेसर्स सचेती बंधु, कुशल चंद सचेती द्वारा प्रतिस्थापित विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से :

1/1. कमल चंद स्वर्गीय श्री कुशल चंद शाह संचेती के पुत्र।

1/2.शेखर चंद पुत्र स्वर्गीय श्री कुशल चंद शाह संचेती निवासी लाखन कोठरी, दुर्गा बाजार, अजमेर।

---- प्रत्यर्थी-वादीगण

अपीलार्थी (गण) की ओर से	:	श्री अजीत कुमार शर्मा वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री रचित शर्मा के साथ।
प्रत्यर्थी (गण) की ओर से	:	श्री अजीत कुमार भंडारी वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री जीतेन्द्र मिश्रा के साथ।

माननीय न्यायमूर्ति सुदेश बंसल

निर्णय

13/09/2022

रिपोर्ट करने योग्य

1. मूल प्रत्यर्थी कालीचरण के विधिक प्रतिनिधियों ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 4, अजमेर द्वारा अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन) संख्या 2, अजमेर की अदालत द्वारा सिविल वाद संख्या 58/95 (9/2002) में पारित निर्णय और डिक्री दिनांक 24.9.2004 की पुष्टि करते हुए सिविल नियमित प्रथम अपील सं. 271/2004 (262/2009) में पारित दिनांक 06.02.2010 के निर्णय और डिक्री, जिसके तहत बेदखली का फरमान और किराए का बकाया प्रत्यर्थीगण-वादीगणों के पक्ष में और प्रत्यर्थीगण-वर्तमान अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित किया गया है, को चुनौती देते हुए सीपीसी के धारा 100 के अंतर्गत यह द्वितीय अपील दायर की है।

2. मामले के प्रासंगिक तथ्य, संक्षेप में, इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थीगण-मकान मालिक ने मदारगेट, अजमेर स्थित प्रश्नगत दुकान के संबंध में प्रत्यर्थी कालीचरण के विरुद्ध 16.2.1987 को सिविल मुकदमा दायर किया था, जिसे वर्ष 1948 में 44/- रुपये प्रतिमाह की दर पर नवल किशोर के नाम पर,किराए पर दिया गया था, जो प्रत्यर्थी कालीचरण का छोटा भाई है। वाद-पत्र में कहा गया था कि मूल किरायेदार नवल किशोर की मृत्यु 28.12.1986 को हो चुकी है और प्रत्यर्थी कालीचरण रेलवे सेवा में थे, जिन्होंने किराए की दुकान में किरायेदार नवल किशोर के साथ कभी कोई व्यवसाय नहीं किया, इसलिए किरायेदारी का अधिकार प्रत्यर्थी को नहीं मिलता है और आगे यह भी कि प्रश्नगत दुकान के किराए का भी भुगतान नहीं किया गया है, इसलिए, वादी ने बकाया किराया और प्रत्यर्थी कालीचरण से किराए की दुकान पर कब्जा दिलाने की प्रार्थना की।

3. मूल प्रत्यर्थी कालीचरण ने यह कहते हुए अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत दुकान उसके भाई नवल किशोर के नाम पर संयुक्त हिंदू परिवार का कर्ता होने के नाते किराए पर ली गई थी, जो एन.के. हैंडलूम के नाम पर जूता बेचने का व्यवसाय करता था और वह नवल किशोर को व्यवसाय में मदद करते थे, इसलिए किरायेदारी का अधिकार

उन्हें मिल गया है और किरायेदार की हैसियत से वाद की दुकान पर उनका कब्जा है।

4. मुकदमा शुरू होने के बाद प्रत्यर्थी कालीचरण की मृत्यु हो गई, इसलिए, उनके विधिक प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाया गया। मूल प्रत्यर्थी कालीचरण के विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन के बाद, जब मुकदमा साक्ष्य दर्ज करने के चरण में था, वादी द्वारा आदेश VI नियम 17 सीपीसी के तहत दिनांक 26.05.1994 को एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें कहा गया था कि वाद में, अन्य बातों के साथ-साथ, संशोधन की मांग की गई थी। वर्तमान वाद के संस्थित होने के समय की दर एक अन्य सिविल वाद संख्या 209/77 में निर्णय दिनांक 9.2.1982 के तहत किराया 131.25/- रुपये प्रतिमाह की दर से निर्धारित किया गया था, लेकिन अपील में, निर्णय दिनांक 2.6.1990 के तहत, किराए की दर बढ़कर 218.75 रुपये /- प्रतिमाह हो गई है। इसलिए, वादी ने 131.25/- रुपये की दर के बजाय 218.75/- रुपये प्रतिमाह की बढ़ी हुई दर पर किराए के बकाया का दावा किया और प्रत्यर्थी को बेदखल करने के लिए गैर-उपयोगकर्ता के आधार को जोड़ने की प्रार्थना की। उपयोक्ता न होने के आधार को जोड़ने के संबंध में यह दलील दी गई कि चूंकि प्रत्यर्थी कालीचरण ने खुद को किराये की दुकान में किरायेदार होने का दावा इस दलील पर किया है कि प्रश्नगत दुकान उसके द्वारा किराए पर ली गई थी। हिंदू अविभाजित परिवार के कर्ता का नाम उनके छोटे भाई नवल किशोर के नाम पर था और वह जूता बेचने के कारोबार में मदद करने के लिए नवल किशोर के साथ किराए की दुकान पर बैठता था, लेकिन मुकदमा दायर करने और अन्य के बाद कालीचरण की मृत्यु हो गई है। एचयूएफ के सदस्य, मृतक प्रत्यर्थी कालीचरण के विधिक प्रतिनिधि के रूप में रिकॉर्ड पर आए हैं, इसलिए, उस दृष्टि से, वादी ने संशोधन के लिए आवेदन में अनुरोध किया कि यदि प्रत्यर्थीगण को किरायेदार के रूप में माना जाता है, तो चूंकि प्रश्नगत दुकान छह माह से अधिक समय से लगातार बंद है, और उसमें कोई व्यवसाय नहीं चल रहा है, इसलिए वादी को गैर-उपयोगकर्ता का आधार जोड़ने की अनुमति दी जाए, जिसके आधार पर वह प्रत्यर्थीगण को किराए की दुकान से बेदखल करने का पात्र है।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि संशोधित वाद-पत्र में पैरा संख्या 7 के बाद प्रस्तावित संशोधनों को शामिल किया गया है। नये पैरा क्रमांक 7 क, 7 ख, 7 ग को भी 8.7.1994 को रिकार्ड पर प्रस्तुत किया गया।

5. प्रतिस्थापित प्रत्यर्थीगण ने भी खुद को किराए की दुकान में किरायेदार होने का

दावा किया और इस आधार पर वाद में संशोधन की मांग करने वाले आवेदन का विरोध किया कि कार्रवाई का एक नया कारण है। वर्तमान मुकदमे में गैर-उपयोगकर्ता का आधार जोड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि इससे मुकदमे की प्रकृति बदल जाएगी और प्रत्यर्थीगण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

6. संशोधन के लिए आवेदन को ट्रायल कोर्ट द्वारा दिनांक 18.5.1995 के आदेश के तहत अनुमति दी गई थी और प्रत्यर्थीगण को संशोधित वाद-पत्र पर लिखित बयान दायर करने का अवसर दिया गया था। चूँकि संशोधन की अनुमति देकर, किराये की बकाया राशि की मात्रा, जिसे 131.25/- रुपये के बजाय 218.75/- रुपये की दर से दावा करने की अनुमति दी गई थी, को भी संशोधित करने की अनुमति दी गई थी, इसलिए, संशोधित वाद-पत्र न्यायालय की ओर से आर्थिक क्षेत्राधिकार से परे चला गया और इस प्रकार उसे आर्थिक क्षेत्राधिकार के सक्षम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए वादी को वापस कर दिया गया था। तदनुसार, वादी द्वारा 3.6.1995 को आर्थिक क्षेत्राधिकार के सक्षम न्यायालय के समक्ष संशोधित वाद प्रस्तुत किया गया था।

7. प्रत्यर्थीगण ने संशोधित वाद-पत्र में अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया और खुद को दुकान में किरायेदार होने का आरोप लगाते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए गैर-उपयोगकर्ता के आधार को स्पष्ट रूप से नकार दिया कि विचाराधीन दुकान कभी भी लगातार छह माह की अवधि के लिए बंद नहीं हुई, बल्कि व्यवसायिक थी और उसमें कारोबार चल रहा है। इस प्रकार, गैर-उपयोगकर्ता का कोई आधार नहीं बनता है।

8. पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों के अनुसार, ट्रायल कोर्ट द्वारा लगभग तेरह मुद्दे तय किए गए थे। यह न्यायालय मुद्दा संख्या 5 से संबंधित है जो मुकदमा दायर करने से पहले छह माह की लगातार अवधि के लिए प्रश्न में दुकान का गैर-उपयोगकर्ता के संबंध में है। अन्य मुद्दे प्रत्यर्थीगण को किरायेदारी अधिकारों के हस्तांतरण और डिफ़ॉल्ट और किराए के बकाया की वसूली से संबंधित हैं। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि मूल प्रत्यर्थी कालीचरण मूल किरायेदार नवल किशोर के साथ किराए की दुकान में बैठता था और किरायेदारी के अधिकार प्रतिस्थापित प्रत्यर्थी अर्थात वर्तमान अपीलार्थीगण को हस्तांतरित कर दिए गए हैं । डिफॉल्ट का मुद्दा वादी के विरुद्ध तय किया गया था, लेकिन मामला संख्या 5 वादी के पक्ष में तय किया गया था और प्रतिमाह 218.75 /- की दर से किराया और भविष्य के प्रतिमाह मुनाफे के बकाया के साथ गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर बेदखली का निर्णय

सुनाया गया था। निर्णय दिनांक 24.9.2004 द्वारा वादी के पक्ष में पारित किया गया।

9. वर्तमान अपीलार्थी-प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 4.9.2004 के बेदखली के निर्णय एवं डिक्री को प्रथम अपील दायर कर चुनौती दी। पहली अपील में, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 18.5.1995 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें गैर-उपयोगकर्ता के आधार को जोड़ने की अनुमति के संबंध में वादी द्वारा दायर आदेश VI नियम 17 सीपीसी के तहत आवेदन की अनुमति दी गई थी। प्रथम अपीलीय अदालत ने पक्षों के बीच वर्तमान मुकदमे में विवाद की प्रकृति पर विचार करने के बाद, 18.5.1995 के आदेश की पुष्टि की और वर्तमान मुकदमे में गैर-उपयोगकर्ता के आधार को जोड़ने की अनुमति देने वाले संशोधन को बरकरार रखा। प्रथम अपीलीय अदालत ने संशोधित वाद-पत्र की दलीलों पर विचार करने और दोनों पक्षों के संपूर्ण साक्ष्यों की सराहना करने के बाद, मुद्दे संख्या 5 पर ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों की पुष्टि की और राजस्थान परिसर (किराया और बेदखली का नियंत्रण) अधिनियम, 1950 (इसके बाद इसे "1950 का अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 13(1)(ञ) के तहत गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर पारित बेदखली के निर्णय को बरकरार रखा। अंत में, पहली अपील दिनांक 06.2.2010 के निर्णय द्वारा अपास्त कर दी गई और किराया एवं बेदखली दिनांक 24.9.2004 के डिक्री की पुष्टि की गई।

10. ट्रायल कोर्ट ने साक्ष्यों की सराहना के बाद प्रत्यर्थीगण को किरायेदार के रूप में माना है और ट्रायल कोर्ट के ऐसे निष्कर्षों को वादी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है और उन पर हस्तक्षेप नहीं किया गया है क्योंकि वे अंतिम रूप से प्राप्त कर चुके हैं और वे न तो पहली अपील में और न ही वर्तमान अपील में विचाराधीन थे। मामला पारित बेदखली के आदेश की स्थिरता का सम्मान मुकदमे की तारीख से पहले लगातार छह माह की अवधि के लिए किराए की दुकान का उपयोग न करने के आधार, जैसा कि 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत परिकल्पित है, के विचरण के लिए प्रस्तुत है। दोनों निचली अदालतों ने धारा के उस आधार को समवर्ती रूप से माना है कि 13(1)(ञ) सिद्ध हो गया है और तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों के विरुद्ध, यह द्वितीय अपील प्रत्यर्थीगण द्वारा पसंद की गई है।

11. द्वितीय अपील के ज्ञापन में, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 06.2.2010 और 24.9.2004 के निचली अदालतों के निर्णयों को चुनौती देने के लिए कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है और न ही कोई कारण बताया है कि कैसे और किस तरह से आक्षेपित निर्णय विकृति से ग्रस्त

हैं या टिकाऊ नहीं हैं। संशोधित अपील के ज्ञापन के अवलोकन से पता चलता है कि, द्वितीय अपील दायर करने के लिए संक्षिप्त तथ्यों का उल्लेख करने के बाद, (क) से लेकर (झ) तक कानून के केवल महत्वपूर्ण प्रश्नों को यह कहते हुए शामिल किया गया है कि कानून के इन महत्वपूर्ण प्रश्नों को इस न्यायालय द्वारा तय किए जाने की आवश्यकता है। अपील का ज्ञापन अपील के स्वरूप के अनुरूप नहीं है, जैसा कि ऑर्डर एक्स.एल.आई. नियम 1 सीपीसी के प्रावधानों के तहत परिकल्पित है और इसलिए दोषपूर्ण है।

12. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 24.8.2011 के आदेश के तहत, दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, अपीलार्थी द्वारा अपील के ज्ञापन में प्रस्तावित और शामिल किए गए कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्नों को वर्तमान द्वितीय अपील में विचार के लिए चुना:

"(1) क्या रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और सामग्री के आधार पर, निचली अदालतों ने यह मानकर अवैध, मनमाने ढंग से और विकृत तरीके से काम किया है कि मुकदमे की तारीख से ठीक पहले लगातार छह माह की अवधि तक मुकदमा परिसर का उपयोग नहीं किया गया है?

(क) क्या तथ्यों और मामले की परिस्थितियों के आधार पर वादी-प्रत्यर्थी को अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत प्रत्यर्थी-अपीलार्थीगण के विरुद्ध बेदखली का आधार सिद्ध किया जा सकता है और क्या न्यायालयों द्वारा निष्कर्ष दर्ज किया गया है उसके संबंध में नीचे दिए गए अंक संख्या 5 विकृत, अस्थिर और अनुचित है?

(ख) क्या मुद्दा संख्या 5 पर निर्णय करते समय निचली अदालतों ने मुकदमे की तारीख से ठीक पहले छह माह की प्रासंगिक अवधि की गणना करने में अवैध रूप से काम किया है और निचली अदालतों द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और डिक्री इस मामले में अमान्य हो गए हैं, जिससे वे इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिए जाने और आपास्त कर किए जाने के उत्तरदायी होंगे।?

(ग) क्या निचली अदालतों ने वादी-प्रत्यर्थी के लिए एक नया मामला बनाने में गैरविधिक और अनुचित तरीके से काम किया है और जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक छह माह की अवधि के लिए सूट की दुकान का उपयोग न करने के संबंध में प्रत्यर्थीगण पर मुकदमे की तारीख से ठीक पहले की प्रासंगिक अवधि के लिए अनुचित तरीके से बोझ डाला है या नहीं? यदि नहीं, तो क्या जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक कथित तौर पर दुकान का

उपयोग न करने के बारे में निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री के आधार पर विकृत और अस्थिर थे?

(घ) क्या निचली अदालतों ने आदेश 6 में 17 सीपीसी नियम के तहत वादी-प्रत्यर्थी द्वारा दायर आवेदन को अनुमति देने और कायम रखने में अवैध रूप से काम किया है और वाद-पत्र में संशोधन की मांग की गई है, जिसके तहत वादी-प्रत्यर्थी को कार्रवाई के एक विशिष्ट कारण को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित करने और मुकदमे की विषय वस्तु को बदलने की अनुमति दी गई थी और क्या ट्रायल कोर्ट ने संशोधन आवेदन की अनुमति देते हुए दिनांक 18.5.1995 का आदेश पारित किया था और प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा दिनांक 06.2.2010 को दिए गए निर्णय में इसे बरकरार रखना विधिक रूप से टिकाऊ है?"

13. दोनों पक्षों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता को विस्तार से सुना, आक्षेपित निर्णय का अध्ययन किया और रिकॉर्ड को स्कैन किया। ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड में 08.08.1995 से पहले के प्रासंगिक कागजात और ऑर्डर-शीट उपलब्ध नहीं है। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देते हुए दिनांक 18.05.1995 के आदेश की प्रमाणित प्रति उपलब्ध करा दी है।

14. यहां ऊपर उल्लिखित कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न मूल रूप से 18.5.1995 के आदेश की वैधता और स्थिरता से संबंधित हैं, जिसमें गैर-उपयोगकर्ता का आधार जोड़ने की अनुमति देने के संबंध में गैर-उपयोगकर्ता के आधार से संबंधित मुद्दे संख्या 5 के संबंध में निचली अदालतों के तथ्य निष्कर्षों के संबंध में विकृति के बारे में वाद में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी गई है। गैर-उपयोगकर्ता के आधार से संबंधित विधि संख्या 1 से 4 के महत्वपूर्ण प्रश्नों से निपटने से पहले, यह न्यायालय विधि संख्या 5 के महत्वपूर्ण प्रश्न से निपटना उचित और उचित समझता है, जो कि अंतःविषय आदेश दिनांक 18.5.1995 को चुनौती देने से संबंधित है, जो वाद-पत्र में गैर-उपयोगकर्ता का आधार जोड़ने की अनुमति देता है।

15. विधि संख्या 5 का महत्वपूर्ण प्रश्नः

"*(5) क्या निचली अदालतों ने वादी-प्रत्यर्थी द्वारा आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत दायर आवेदन को अनुमति देने और बनाए रखने में अवैध रूप से काम किया है, जिसमें वादी-प्रत्यर्थी को वादी में संशोधन की मांग की गई थी, जिसके तहत वादी-प्रत्यर्थी को कार्रवाई के एक अलग कारण को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित करने और मुकदमे की*

विषय वस्तु को बदलने के लिए की अनुमति दी गई थी। और क्या ट्रायल कोर्ट द्वारा संशोधन आवेदन की अनुमति देने वाला दिनांक 18.5.1995 का आदेश और प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा दिनांक 06.2.2010 को अपने निर्णय में इसे बरकरार रखना विधिक रूप से टिकाऊ है?"

16. . अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि वादी के संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देकर, किराए की दुकान के गैर-उपयोगकर्ता से संबंधित कार्रवाई का एक नया कारण वादी में डाला गया है और जिसके कारण मुकदमे की प्रकृति काफी हद तक बदल गई है अथवा इसे बदल दिया गया है। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत परिकल्पित सामग्री के आलोक में विचार करने की आवश्यकता है, जो इस बात पर विचार करना अनिवार्य आधार बनाता है कि "मुकदमे की तारीख से ठीक पहले" लगातार छह माह की अवधि के लिए बंद कर दिया गया। उनका कहना है कि संशोधन की अनुमति देने से यह गंभीर भ्रम पैदा हो गया है कि छह माह की अवधि किस तारीख से मानी जाएगी और मुकदमे की तारीख क्या होगी। इस प्रकार, उनका कहना है कि संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देकर अपीलार्थीगण पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डाला गया है इसलिए, दिनांक 18.5.1995 का आदेश स्वयं कानून की नजर में खराब है और कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

17. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि गैर-उपयोगकर्ता के आधार को लागू करने के लिए कार्रवाई का कारण मुकदमे के दौरान अर्जित किया गया था और जब प्रत्यर्थी खुद को किराए की दुकान में किरायेदार होने का दावा कर रहे थे, तो वादी ने वैकल्पिक प्रार्थना की किराए की दुकान का उपयोग न करने के आधार पर बेदखल करने पर मुकदमा जोड़ा जाएगा। उनका कहना है कि कार्रवाई के नए कारण के आधार पर, वादी-मकान मालिक किराए की दुकान के संबंध में प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध बेदखली के लिए एक और मुकदमा शुरू कर सकता था, लेकिन जब किराए की दुकान के संबंध में पक्षों के बीच पहले से ही एक नागरिक मुकदमा लंबित था। उन्होंने लंबित मुकदमे में संशोधन की प्रार्थना की और तर्क दिया ट्रायल कोर्ट ने लंबित मुकदमे में कार्रवाई के नए कारण को शामिल करने और मजबूर करने के बजाय उसी मुकदमे में गैर-उपयोगकर्ता को बेदखल करने के आधार पर विचार करने के लिए संशोधन की अनुमति देकर

वादी-मकान मालिक एक और अलग मुकदमा दायर करने के लिए अपने विवेक का सही इस्तेमाल किया है। उन्होंने कहा कि संशोधन की अनुमति देने और गैर-उपयोगकर्ता के आधार को जोड़ने के बाद, प्रत्यर्थीगण को संशोधित वाद में लिखित बयान दायर करने का अवसर दिया गया है और प्रत्यर्थीगण ने संशोधित लिखित बयान दायर किया है और बेदखली के आधार का खंडन करने के लिए पूरे साक्ष्य भी प्रस्तुत किए हैं। और इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण को किसी भी प्रकार का कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है। उन्होंने तर्क दिया कि वादी द्वारा दायर संशोधन के लिए आवेदन वास्तविक था और संशोधन की अनुमति देने से दूसरे पक्ष पर ऐसा कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ, जिसकी धन के मामले में पर्याप्त भरपाई नहीं की जा सकती, बल्कि इसके विपरीत, संशोधन से इनकार करने से एक ही पक्ष की एक ही संपत्ति के संबंध में किराये की दुकान के बीच कई कार्यवाही हो सकती हैं।

18. प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने श्याम सुंदर बनाम प्रकाश चंद [2012 (4) डब्लूएलसी 624] के निर्णय पर भरोसा जताया है। इस निर्णय में, इस न्यायालय की एकलपीठ ने कहा कि "यह अच्छी तरह से स्थापित विधिक प्रस्ताव है कि कार्यवाही के किसी भी चरण में मकान मालिक द्वारा बेदखली का एक नया आधार लिया जा सकता है और इस तरह के संशोधन से पहले से ही की गई कार्रवाई के कारण मुकदमे में मकान मालिक पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।" यह एक मामले में संभव है कि बेदखली के एक नए आधार के संबंध में कार्रवाई का कारण मुकदमा की लंबित अवधि के दौरान मुकदमा दायर करने के बाद उत्पन्न होता है और यदि ऐसा है, तो इस तरह के आधार पर वाद-पत्र में संशोधन किया जा सकता है। बेदखली के नए आधार को केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि किसी पूर्व समय में मकान मालिक द्वारा एक वचन दिया गया था कि वह वाद में संशोधन की मांग नहीं करेगा। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि वचन देने के अपने आचरण के कारण प्रत्यर्थी ने छूट दे दी है, वाद-पत्र में संशोधन मांगने का उनका अधिकार था और उन्हें उचित और वास्तविक आवश्यकता या किसी अन्य आधार पर बेदखली के नए आधार को शामिल करने वाले संशोधन की मांग करने से रोक दिया गया था"

19. बेशक, अच्छी तरह से स्थापित विधिक स्थिति यह है कि दलीलों में संशोधन को अधिकार के मामले के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है और दलीलों में संशोधन की मांग करने वाले आवेदन को अनुमति/अस्वीकार करना न्यायालय के न्यायिक विवेक का

मामला है जिसे स्पष्ट रूप से सावधानी और सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए। और इसे कभी भी आकस्मिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालयों को सद्भावनापूर्ण, वैध, ईमानदार और आवश्यक संशोधनों से इनकार नहीं करना चाहिए और साथ ही दुर्भावनापूर्ण, बेकार और बेईमान संशोधनों की अनुमति भी नहीं देनी चाहिए।

20. माननीय उच्चतम न्यायालय ने रेवाजीतू बिल्डर्स और डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड संस [(2009) 10 एससीसी 84] के मामले में दलीलों में संशोधन की अनुमति/अस्वीकृति के मुद्दे से संबंधित अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का गंभीर रूप से विश्लेषण करने के बाद, यह उल्लेख किया है कि संशोधन के लिए आवेदनों से निपटते समय कुछ कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, यथा:

"63. अंग्रेजी और भारतीय दोनों मामलों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर, कुछ बुनियादी सिद्धांत सामने आते हैं जिन्हें संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।:

(क) क्या मांगा गया संशोधन मामले के उचित और प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है;

(ख) क्या संशोधन के लिए आवेदन प्रामाणिक है या दुर्भावनापूर्ण;

(ग) संशोधन से दूसरे पक्ष पर ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी धन के रूप में पर्याप्त भरपाई नहीं की जा सके;

(घ) संशोधन से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई मुकदमे चलेंगे;

(ड.) क्या प्रस्तावित संशोधन संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदलता है; और

(च) एक सामान्य नियम के रूप में, यदि संशोधन के दावों पर एक नया मुकदमा आवेदन की तारीख पर सीमा के कारण वर्जित होगा, तो न्यायालय को संशोधनों को अस्वीकार कर देना चाहिए।"

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ये कारक कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं जो केवल उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं और संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति देते या अस्वीकार करते समय इन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए।

21. माननीय उच्चतम न्यायालय ने संपत कुमार बनाम अय्याकन्नु और अन्य [(2002) 7 एससीसी 559] के मामले में वादी की संशोधित दलीलों से संबंधित मुद्दे पर

चर्चा करते हुए पाया गया कि यदि वादी के लिए कार्रवाई के एक नए कारण के आधार पर एक स्वतंत्र मुकदमा दायर करना स्वीकार्य है, जो मुकदमा लंबित होने पर वादी के सामने उत्पन्न हुआ है, उसी राहत को लंबित मुकदमे में शामिल करने की अनुमति क्यों नहीं दी जा सकती जिसके लिए नए मुकदमे में प्रार्थना की जा सकती है। वास्तव में, संशोधन की अनुमति देने से कार्यवाहियों की बहुलता कम हो जाएगी। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने रुखमाबाई बनाम लाला लक्ष्मीनारायण [एआईआर 1960 एससी 335] मामले में प्रतिपादित कानून के सिद्धांत का भी पालन किया। जिसमें यह विचार किया गया कि जहां उचित राहत की मांग किए बिना मुकदमा दायर किया गया था, यह प्रथा का एक सुस्थापित नियम है कि मुकदमे को स्वचालित रूप से अपास्त नहीं किया जाए बल्कि वादी को आवश्यक संशोधन करने की अनुमति दी जाए यदि वह ऐसा करना चाहता है।

22. पीरगोंडा होंगाओंडा पाटिल बनाम कलगोंडा शिदगोंडा पाटिल और अन्य [एआईआर 1957 एससी 363] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने राय दी कि उन सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो दो शर्तों को पूरा करते हों:

दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं करना, और पक्षकारों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए पक्षकारों के लिए आवश्यक होना।

न्यायालय ने माना कि संशोधनों को केवल तभी अस्वीकार किया जाना चाहिए जहां दूसरे पक्ष को उसी स्थिति में नहीं रखा जा सकता है जैसे कि दलील मूल रूप से सही थी, लेकिन संशोधन से उसे चोट पहुंचेगी जिसकी भरपाई लागत के रूप में नहीं की जा सकती।

23. मौजूदा मामले में, शुरू में जब किराए की दुकान के संबंध में मुकदमा दायर किया गया था, तो वादी द्वारा यह दलील दी गई थी कि मूल प्रत्यर्थी कालीचरण सरकारी नौकरी में था और मूल किरायेदार नवल किशोर की मृत्यु के बाद किरायेदारी का अधिकार नहीं है जो उस पर हावी न हो। प्रत्यर्थी कालीचरण ने दलील दी कि उस दुकान को हिन्दू अविभाजित परिवार के कर्ता की हैसियत से उनके छोटे भाई नवल किशोर के नाम पर किराये पर लिया गया था और इसलिए, प्रत्यर्थी कालीचरण के साथ-साथ उनकी मृत्यु के बाद अन्य उत्तराधिकारी, जिन्हें प्रत्यर्थी के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया था, ने प्रश्न में दुकान के संबंध में किरायेदारी अधिकारों के हस्तांतरण का दावा किया। मुद्दे क्रमांक 1 और 3 को भी उस संबंध में तैयार किया गया था।

24. किराए की दुकान से प्रत्यर्थीगण को बेदखल करने से संबंधित पक्षों के बीच इस

तरह के विवाद की पृष्ठभूमि में, वादी ने दिनांक 26.05.1994 को संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया है, जिसमें एक वैकल्पिक दलील जोड़ने की मांग की गई है कि यदि प्रत्यर्थीगण को किरायेदार के रूप में माना जाता है, तो एक वैकल्पिक विकल्प किराए की दुकान का उपयोग न करने के आधार पर बेदखली की प्रार्थना को जोड़ने की अनुमति दी जाए। प्रश्नगत दुकान पिछले छह माह से लगातार बंद थी और उसमें कोई व्यवसाय नहीं किया जा रहा था, इसलिए वादी ने धारा 13(1)(ञ) के तहत गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर बेदखली का आदेश पारित करने का दावा किया। 1950 के अधिनियम के साथ-साथ गैर-उपयोगकर्ता के आधार को जोड़ने की मांग करते हुए, मुकदमा दायर करने के बाद, एक अन्य अपील संख्या 247/1986 के निर्णय के तहत दिनांक 2.6.1990 को किराया 218.75/- रुपये की उच्च दर पर निर्धारित किया गया था। इसलिए, बकाया किराए को भी किराए की बढ़ी हुई दर अर्थात 218.75/- रुपये प्रतिमाह के साथ जोड़ने की मांग की गई थी, बजाय इसके कि पहले दावा किया गया किराया 131.25/- रुपये प्रतिमाह की दर पर था।

25. ट्रायल कोर्ट ने विवाद की प्रकृति पर विचार करने और दोनों पक्षों को सुनने के बाद, दिनांक 18.5.1995 के आदेश के तहत संशोधन के आवेदन की अनुमति दी। प्रस्तावित संशोधन को शामिल करते हुए संशोधित वाद-पत्र 8.7.1994 को ही प्रस्तुत किया गया था जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया था। चूँकि किराये की बकाया दर को किराये की बढ़ी हुई दर के साथ जोड़ने की अनुमति देने से आर्थिक हानि होगी ट्रायल कोर्ट का क्षेत्राधिकार बदल गया और परिणामस्वरूप, संशोधित वाद-पत्र को वर्तमान मुकदमे पर निर्णय लेने के लिए सक्षम आर्थिक क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए लौटा दिया गया था। तदनुसार, संशोधित वाद-पत्र 3.6.1995 को आर्थिक क्षेत्राधिकार वाले उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

26. इसके बाद, प्रत्यर्थीगण को संशोधित वाद-पत्र में अपना संशोधित लिखित बयान जमा करने की अनुमति दी गई है। पक्षकारों की संशोधित दलीलों के अनुसार नए मुद्दे तैयार किए गए और दोनों पक्षों ने दलीलों के संशोधित हिस्से सहित अपने संबंधित साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूरा अवसर लिया। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि संशोधन में गैर-उपयोगकर्ता का आधार जोड़ने की अनुमति देने से प्रत्यर्थीगण को कोई पूर्वाग्रह हुआ है। कानून का यह भी स्थापित प्रस्ताव है कि यदि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान उत्पन्न नए वाद-कारण के

आधार पर कोई नया वाद दायर किया जा सकता है, तो लंबित वाद में संशोधन कर नए वाद-कारण को भी शामिल करने की अनुमति दी जा सकती है। लंबित मुकदमे में, संशोधन की अनुमति देने से मुकदमेबाजी की बहुलता कम हो जाएगी।

27. जहां तक अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई शिकायत का प्रश्न है कि उस तारीख के बारे में एक गंभीर भ्रम पैदा हो गया है जिसमें से छह माह की अवधि की गणना की जाएगी और मुकदमे की तारीख क्या होनी चाहिए। सबसे पहले, प्रत्यर्थीगण ने पहले ही संशोधित लिखित बयान दायर कर दिया है और साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। लिखित बयान में ली गई प्रत्यर्थीगण की दलील कि किराए की दुकान लगातार छह माह की अवधि तक बंद नहीं रही, का परीक्षण न्यायालय द्वारा गुणागुण के आधार पर पक्षकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य के अनुसार विश्लेषण किया गया है और दूसरी बात, ऐसे बिंदु संशोधन के गुणागुण से संबंधित हैं, जिस पर गैर-उपयोगकर्ता के मुद्दे से संबंधित कानून के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों से निपटते समय विचार और निर्णय लिया जाएगा। इसलिए, ऐसे परिदृश्य में, यह यह नहीं माना जा सकता कि संशोधन की अनुमति देकर अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण को किसी भी तरह से पूर्वाग्रहित किया गया है और दिनांक 18.5.1995 के आदेश को कानून की दृष्टि से बुरा नहीं माना जा सकता है।

28. प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 24.9.2004 के अंतिम निर्णय और बेदखली के डिक्री के विरुद्ध पहली अपील दायर करते समय दिनांक 18.5.1995 के संशोधन की अनुमति के आदेश पर आक्षेप किया और प्रथम अपीलीय अदालत ने पहले दिनांक 06.2.2010 के आक्षेपित निर्णय के तहत अपील पर निर्णय लेते समय दिनांक 18.5.1995 के आदेश की स्थिरता पर फिर से विचार किया है। प्रथम अपीलीय अदालत ने स्पष्ट रूप से देखा है कि ट्रायल कोर्ट ने कानून के मापदंडों के भीतर वाद-पत्र में संशोधन की अनुमति देने में अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग किया है और इससे प्रत्यर्थीगण को किसी भी तरह से कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, इस प्रकार, संशोधन की अनुमति देने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया था, बल्कि उसकी पुष्टि की गई।

29. इस न्यायालय ने, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संशोधन आवेदन को अनुमति देने या अस्वीकार करने के लिए न्यायालयों के पास निहित क्षेत्राधिकार के संबंध में कानून के प्रस्ताव पर विचार किया है और यहां ऊपर संदर्भित निर्णयों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कारकों पर विचार किया है, और यह इस दृष्टिकोण से

अपनी सहमति रखता है। ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.5.1995 को बरकरार रखने के लिए प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा लिया गया, जिसमें वाद-पत्र में संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति दी गई। दिनांक 18.5.1995 के आदेश में कोई अवैधता नहीं है और यह कानून के मापदंडों के भीतर है और कानून की नजर में टिकाऊ है। इस प्रकार, विधि संख्या 5 के प्रश्न का तदनुसार उत्तर दिया जाता है और अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णय लिया जाता है।

30. <u>विधि संख्या 1 से 4 के महत्वपूर्ण प्रश्न:-</u>

31. कानून के सभी चार महत्वपूर्ण प्रश्न सह-संबंधित हैं और गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर बेदखली का आदेश पारित करने के संबंध में आक्षेपित निर्णयों में विकृति से संबंधित हैं। इसलिए, सभी पर एक साथ विचार और निम्नानुसार निर्णय लिया जा रहा है:

विधि संख्या 1 से 4 के प्रश्नों से निपटने से पहले, यह न्यायालय 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के प्रावधान पर नजर डालना उचित और उपयुक्त समझता है जो मकान मालिक को किरायेदार की बेदखली का आधार प्रदान करता है। 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के अनुसार, यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि परिसर-

(i) का उपयोग नहीं किया गया है;

(ii) बिना उचित कारण के;

(iii) जिस उद्देश्य के लिए उन्हें किराए पर दिया गया था...

(iv) लगातार छह माह की अवधि के लिए...

-मुकदमे की तारीख से ठीक पहले, या"

32. वादी द्वारा दिनांक 26.05.1994 को संशोधन के लिए आवेदन के माध्यम से गैर-उपयोगकर्ता का आधार प्रस्तुत करने की प्रार्थना की गई थी। संशोधित वाद-पत्र में पैरा संख्या 7 क, 7 ख, 7 ग को शामिल करते हुए प्रस्तावित संशोधन को भी 8.7.1994 को ही रिकॉर्ड में रखा गया। संशोधन के लिए आवेदन को ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 18.5.1995 के आदेश द्वारा अनुमति दे दी है। प्रत्यर्थीगण ने लिखित बयान प्रस्तुत किया है और गैर-उपयोगकर्ता के आधार से इनकार किया है। लिखित बयान में, प्रत्यर्थीगण ने इस बात पर कोई भ्रम नहीं जताया है कि किराए की दुकान को लगातार बंद करने की छह माह की

अवधि को किस तारीख से गिना जाएगा। प्रत्यर्थीगण ने लगातार छह माह तक किराए की दुकान बंद रखने की बात से साफ इनकार किया है। पक्षों की संबंधित दलीलों के अनुसार, संशोधित वाद और संशोधित लिखित बयान के संदर्भ में, गैर-उपयोगकर्ता के आधार से संबंधित विशिष्ट मुद्दा संख्या 5 ट्रायल कोर्ट द्वारा तय किया गया था। दोनों पक्षों ने पूरी जागरूकता और चेतना के साथ अपनी गवाही दी है गैर-उपयोगकर्ता के आधार के बारे में जिसकी 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के मापदंडों के भीतर जांच की जानी आवश्यक है।

33. विद्वान विचारण न्यायालय ने 8.7.1994 से छह माह की अवधि को ध्यान में रखते हुए वाद संख्या 5 का निर्णय किया है, इसका अर्थ है कि जब वादी ने गैर-उपयोगकर्ता के आधार को शामिल करते हुए संशोधित वाद दायर किया। इस प्रकार, ट्रायल कोर्ट ने जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक की अवधि पर विचार किया है, जो संशोधित मुकदमे से छह माह पहले की अवधि है जिसमें गैर-उपयोगकर्ता का आधार वर्तमान मामले में शामिल किया गया था, गैर-उपयोगकर्ता का आधार संशोधन के लिए आवेदन के माध्यम से जोड़ने की मांग की गई है और संशोधित वाद 08.07.1994 को दायर किया गया था, इसलिए, गैर-उपयोगकर्ता के आधार का विश्लेषण करने के उद्देश्य से मुकदमे की तारीख को सही तरीके से लिया गया है जिसके लिए आवेदन किया गया है संशोधन दायर किया गया और संशोधित वाद-पत्र रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया गया।

34. इस संबंध में, कानून का विधिक प्रस्ताव स्पष्ट है कि यह कानून का सार्वभौमिक और पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि संशोधन, यदि वाद-पत्र में शामिल करने की अनुमति दी जाती है, तो उसे मुकदमे की तारीख से संबंधित होना चाहिए लेकिन यह तथ्यों और प्रत्येक मामले की परिस्थितियाँ पर निर्भर करेगा। । वर्तमान मामले में, जब संशोधन के लिए आवेदन के माध्यम से गैर-उपयोगकर्ता का एक आधार जोड़ने की मांग की गई है, और संशोधित शिकायत 8.7.1994 को रिकॉर्ड पर रखी गई थी, इसलिए, गैर-उपयोगकर्ता के इस आधार के प्रयोजन के लिए जैसा कि 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत निहित है, मुकदमे की तारीख केवल 8.7.1994 होगी और मुकदमे की तारीख अर्थात 16.2.1987 को नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि मूल मुकदमे में गैर-उपयोगकर्ता का आधार था लिया गया। संबंध का सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

35. वर्तमान मुकदमे में 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत निहित गैर-

उपयोगकर्ता को बेदखल करने के आधार पर विचार करने के उद्देश्य से, इस मुद्दे के संबंध में, "मुकदमे की तारीख" क्या मानी जानी चाहिए "इसका अर्थ है मूल मुकदमे की तारीख अर्थात 16.2.1987 या 8.7.1994 को गैर-उपयोगकर्ता के आधार को शामिल करने के बाद दायर संशोधित मुकदमे की तारीख, निम्नलिखित निर्णयों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जा सकता है।

36. चंदगी राम बनाम बाबूलाल [1997 (2) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 624] के मामले में न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि "क्या मुकदमे के लंबित रहने के दौरान सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 सीपीसी के तहत वाद-पत्र में किया गया संशोधन मुकदमा दायर करने की तारीख से संबंधित होगा।" या नई पृष्ठभूमि पर कार्यवाही संशोधित वाद दायर करने की तारीख से शुरू होगी?" प्रश्न उन तथ्यों की पृष्ठभूमि में उभरता है जो डिफ़ॉल्ट, भौतिक परिवर्तन और उपद्रव के आधार पर बेदखली का मुकदमा 18.3.1986 को दायर किया गया था। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, आदेश VI नियम 17 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर करके किराए के परिसर की उचित और वास्तविक आवश्यकता का एक और आधार शामिल किया गया था, जिसे 11.7.1995 को अनुमति दी गई थी और संशोधित शिकायत 24.7.1995 को दायर की गई थी। मुद्दा 1950 के अधिनियम की धारा 14(3) के आलोक में उठा, जो परिसर को किराए पर देने की तारीख से पांच वर्ष की समाप्ति से पहले उचित और वास्तविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली को प्रतिबंधित करता है। मूल मुकदमा दायर करने की तारीख पर, किरायेदारी की तारीख से पांच वर्ष पूरे नहीं हुए थे, लेकिन जब तक सद्भावना और उचित आवश्यकता का आधार जोड़ा गया, तब तक पांच वर्ष की अवधि समाप्त हो चुकी थी। ट्रायल कोर्ट ने संशोधन को मूल मुकदमा दायर करने की तारीख से प्रभावी माना और इस तरह के मुकदमे को वास्तविक आवश्यकता के आधार पर चलने योग्य नहीं माना गया लेकिन उच्च न्यायालय ने प्रश्न पर विचार करते हुए बी.बनर्जी बनाम श्रीमती अनीता पैन [एआईआर 1975(एससी) 1146] में माननीय उच्चतम न्यायालय के एक प्रसिद्ध निर्णय पर भरोसा जताया और माना कि अधिनियम के आदेश 14(3) के प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए, मूल मुकदमे की स्थापना की पहली तारीख को नजरअंदाज करना होगा और मुकदमे पर विचार करने के उद्देश्य से वास्तविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली, संशोधन के माध्यम से शामिल करते हुए, मुकदमे की कार्यवाही 24 जुलाई, 1995 को शुरू मानी जानी चाहिए जब नए

आधार को शामिल करते हुए संशोधित वाद दायर किया गया था। न्यायालय ने माना कि ऐसी स्थिति में, संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया वास्तविक आवश्यकता का नया आधार मुकदमा दायर करने की तारीख से संबंधित नहीं होगा, बल्कि संशोधित वाद दायर करने की तारीख से प्रभावी माना जाएगा।

37. इस न्यायालय ने रणछोड़ बी. दास बनाम कन्हैया लाल के एलआर [2005 (2) डब्लूएलसी (राजस्थान) 10] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार पर विचार किया और मामले के कानून पर विचार करने के बाद माना कि "वादी के संशोधन के संबंध के सिद्धांत को माना जाता है।" एक ऐसा प्रस्ताव बने जो आम तौर पर विषय को नियंत्रित करता है, न कि सभी मामलों को नियंत्रित करने वाले कानून या प्रक्रिया का नियम।"

38. संपत कुमार (सुप्रा.) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दलीलों में संशोधन के संदर्भ में संबंध के सिद्धांत के मुद्दे से निपटते हुए, पैरा 10 में यह देखा:

"जब मुकदमे की तारीख से संबंधित एक संशोधन शामिल किया जाता है। हालाँकि, दलीलों में संशोधन के संदर्भ में संबंध-पीठ का सिद्धांत सार्वभौमिक अनुप्रयोग में से एक नहीं है और उचित मामलों में न्यायालय संशोधन की अनुमति देते समय यह निर्देश देने में सक्षम है कि उसके द्वारा अनुमत संशोधन की तारीख से संबंधित नहीं होगा। मुकदमा और उसके द्वारा अनुमत सीमा तक उस तारीख को न्यायालय के समक्ष लाया गया माना जाएगा जिस दिन संशोधन की मांग करने वाला आवेदन दायर किया गया था।"

39. इस न्यायालय ने डॉ. केदार नाथ बनाम श्रीमती धापू कंवर [2005(1) डब्ल्यूएलसी (राजस्थान) 300] के मामले में वर्तमान मामले में उठे समान मुद्दे पर विचार करते हुए, "तारीख से ठीक पहले की अवधि" निर्धारित करने के लिए गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर संशोधन की प्रभावशीलता पर विचार करने के संबंध में, जैसा कि 1950 के अधिनियम की धारा 13(1)(ञ) के तहत परिकल्पित है, चंदगी राम (सुप्रा.) के निर्णय पर भरोसा किया और देखा कि "धारा 13(1)(ञ) के तहत 1950 का अधिनियम मूल रूप से मुकदमा दायर करने के समय वादी-मकान मालिक के पास उपलब्ध नहीं था, लेकिन वादी के अनुसार, यह आधार मुकदमे के लंबित रहने के दौरान उत्पन्न हुआ था, इसलिए, किराए की दुकान के गैर-उपयोगकर्ता का आधार प्रस्तुत किया गया था। न्यायालय की अनुमति से, मूल मुकदमे में संशोधन का प्रावधान किया गया और इसलिए, संशोधन के माध्यम से बेदखली का नया

आधार जोड़ा गया और जो मुकदमे के लंबित रहने के दौरान उत्पन्न हुआ, वह मूल मुकदमे की स्थापना की तारीख से संबंधित नहीं होगा, लेकिन वह उस तारीख से प्रभावी होगा, जब संशोधित वाद दायर किया गया था। इस मामले में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने पूरन मल बनाम रहमान [आरएलआर 1992 (1) 206] और गौरी लाल बनाम गुर्जर मल [आरएलआर 1992 (1) 75] के मामले में पारित दो निर्णयों पर भी विचार किया और देखा कि दोनों निर्णयों में, "मुकदमे की तारीख से तुरंत पहले" शब्दों की व्याख्या करते हुए, यह माना गया कि किरायेदार बेदखली के लिए उत्तरदायी होगा यदि उसने सिद्ध कर दिया है कि किरायेदार ने मुकदमे की तारीख से ठीक पहले लगातार छह माह की अवधि के लिए परिसर का उपयोग नहीं किया है, लेकिन मूल मुकदमे की तारीख से पहले या संशोधित मुकदमे की तारीख से छह माह की अवधि पर विचार करने के लिए संशोधन की प्रभावशीलता के बारे में मुद्दा इन दो निर्णयों में विचार के लिए नहीं उठा। अंततः, इस मुद्दे पर विस्तृत रूप से विचार करने के बाद, न्यायालय ने इसे आधार पर विचार करने के उद्देश्य से गैर-उपयोगकर्ता को बेदखली के आधार के रूप में संशोधन के माध्यम से जोड़ा गया माना, और यह कहा कि मुकदमे की तारीख तब होगी, जब इस आधार वाला संशोधित वाद ट्रायल कोर्ट में दायर किया गया था।

40. बी.बनर्जी (सुप्रा.) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित एक प्रसिद्ध निर्णय को पढ़ने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष मुद्दा मकान मालिक और किरायेदार के बीच लंबित मुकदमे में नये खंड (च) और (चच) का समावेशन की अनुमति देने या अस्वीकार करने के संबंध में उठा था, जैसा कि मूल अधिनियम की धारा 13 में संशोधन अधिनियम द्वारा शामिल किया गया है। संशोधन की अनुमति के बिना, विचाराधीन मुकदमा चूंकि वे असंशोधित स्थिति में खड़े हैं, वे धारा 13 में निहित कब्जे की वसूली पर ओम्निबस निषेध के कारण अपास्त किए जाने योग्य थे, लेकिन 1950 के अधिनियम की धारा 13 में नए खंड (च) और (चच) के माध्यम से संशोधन को जमीन पर बेदखली की मांग करने की अनुमति देकर, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है, मकान मालिक द्वारा मुकदमा आगे बढ़ाया जा सकता था। उच्चतम न्यायालय धारा 13(1) और खंड (च) और (चच) और पश्चिम बंगाल परिसर किरायेदारी अधिनियम (1956 की संख्या XII) की धारा 13(3क) (1969 के अधिनियम XXXIV द्वारा संशोधित) के प्रावधान पर विचार कर रहा था। जमींदार द्वारा स्थापित मुकदमे मूल अधिनियम के खंड (च) पर आधारित थे।

लेकिन) नए खंड (च) और (चच) को शामिल करके इसे संशोधन अधिनियम के माध्यम से प्रतिस्थापित किया गया। इस प्रकार, मुकदमे स्पष्ट रूप से खंड (च) और (चच) में दिए गए आधार पर आधारित नहीं थे। संशोधित धाराओं में निहित कब्जे की वसूली के लिए आधारों को लागू करने के लिए, उप-धारा (3क) द्वारा निषेध को समाप्त कर दिया गया था। तीन वर्ष के भीतर वाद संस्थित करने पर रोक पर विचार करते हुए तथा लंबित वादों में नए सम्मिलित प्रावधानों में संशोधन की अनुमति दी जाए या नहीं तथा किस तिथि को प्रभावी माना जाए, इस पर विचार करते हुए माननीय न्यायालय ने दो सिद्धांतों को प्रतिपादित किया:

(c) हम इस बात से संतुष्ट हैं कि जहां तक संभव हो न्यायालयों को मुकदमेबाजी की बहुलता से बचना चाहिए, मुकदमे की कोई भी व्याख्या जो मुकदमेबाजी के उद्देश्यहीन प्रसार को रोकेगी, मुकदमेबाजी द्वारा सहायता चाहने वाले पक्षों के लिए सुरक्षा की प्रभावशीलता को कम किए बिना, होनी चाहिए। किसी भी शाब्दिक, पांडित्यपूर्ण, विधिक या तकनीकी रूप से सही विकल्प को प्राथमिकता दी जाएगी। इस आधार पर, हम संशोधित अधिनियम की धारा 13 की व्याख्या करने और उस अधिनियम की धारा 4 को प्रभावी बनाने के लिए तैयार हैं। तदनुसार, उच्चतम न्यायालय ने वादी को उप-धारा 1 और धारा 13 के खंड (च) और/या (चच) के तहत अपने आधार बताते हुए नई याचिका दायर करने की अनुमति दी।

(ci) इस उद्देश्य के लिए पहले एक मुकदमे की स्थापना को नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि वह खंड (च) और (चच) द्वारा कवर किए गए आधार पर आधारित नहीं था और उप-धारा (3क) द्वारा आकर्षित नहीं है। वादी-मकान मालिक ने इन नए आधारों की कार्यवाही तभी शुरू की जब उन्होंने इन आधारों को निर्धारित करने के लिए याचिका दायर की। सच्ची भावना में, वादी-मकान मालिक नए आधारों पर वसूली के लिए अपना मुकदमा केवल उसी तारीख को दायर करता है जिस दिन वह अपनी नई दलीलें प्रस्तुत करता है।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि हम इस बात पर जोर देने में कर्मकांडी नहीं हो सकते कि वाद-पत्र की वापसी और संशोधनों को शामिल करते हुए उसे दोबारा प्रस्तुत करना कानून की पवित्र आवश्यकता नहीं है। सामाजिक न्याय और मामले के सार को तब पूर्णता मिलती है जब स्थानांतरण और अतिरिक्त दलीलों को दायर करने के बीच तीन वर्ष के अंतराल के अधीन नई दलीलें प्रस्तुत की जाती हैं। यह भी राय दी गई कि विपरीत पक्ष के किरायेदार को अतिरिक्त दलीलों के लिए अपना लिखित बयान दायर करने का अवसर दिया जाएगा और

न्यायालय दोनों पक्षों को अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देगी और जो कि अतिरिक्त दलीलों पर अच्छी तरह से दर्शाया गया है।

41. यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों में प्रतिपादित कानून के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान मामले के तथ्यों पर कानून के ऐसे प्रस्ताव को लागू करते हुए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि ट्रायल कोर्ट ने वाद में आधार जोड़ने के लिए संशोधन की अनुमति देकर और गैर-उपयोगकर्ता को बेदखल करने में कानून में कोई गलती नहीं की है। साथ ही, इसने गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर विचार करने के उद्देश्य से भी कोई त्रुटि नहीं की है। मुकदमे की तारीख को संशोधित वाद दायर करने की तारीख के रूप में माना जाता है, जो 8.7.1994 है। मुकदमा दायर करने की मूल तारीख अर्थात 16.2.1987 को उचित रूप से नजरअंदाज कर दिया गया है, कम से कम गैर-उपयोगकर्ता के आधार को तय करने के उद्देश्य से, क्योंकि इसे मूल मुकदमे में शामिल नहीं किया गया था, लेकिन मुकदमे के लंबित रहने के दौरान विवाद उत्पन्न हुआ था। इसके अलावा यह एक निर्विवाद स्थिति है कि गैर-उपयोगकर्ता के आधार में संशोधन की अनुमति देने के बाद, प्रत्यर्थीगण को संशोधित लिखित बयान दायर करने का अवसर दिया गया है और प्रत्यर्थीगण ने योग्यता के आधार पर गैर-उपयोगकर्ता के आधार को नकारते हुए, संशोधित लिखित बयान दायर करके उस अवसर का लाभ उठाया है। न्यायालय इस स्थिति से अनभिज्ञ नहीं है कि गैर-उपयोगकर्ता के आधार से संबंधित संशोधित दलीलों को शामिल करने के बाद, मुद्दा संख्या 5 तैयार किया गया था और दोनों पक्षों ने इस मुद्दे पर अपने पूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। जहां तक गैर-उपयोगकर्ता के आधार के प्रयोजन का प्रश्न है, मुकदमे की तारीख को संशोधित वाद दायर करने की तारीख मानने में किसी भी पक्ष को कोई भ्रम नहीं है; अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण ने किराए की दुकान बंद करने के संबंध में वादी के खंडन में, प्रदर्श 1 से प्रदर्श 236 तक बिल और वाउचर के रूप में अपने साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। ट्रायल कोर्ट ने दोनों पक्षों के साक्ष्यों की सराहना के बाद, धारा 13(1)(ञ) की आवश्यक सामग्री के अनुसार गैर-उपयोगकर्ता के मुद्दे पर विचार किया है, मुकदमे की तारीख को संशोधन के लिए आवेदन दायर करने की तारीख माना है और गैर-उपयोगकर्ता के आधार को शामिल करने वाला वाद संशोधित किया है। इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यात्मक और विधिक पहलू के साथ जुड़ी परिस्थितियों की समग्रता में, तर्क के लिए यह नहीं माना जा सकता है कि अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थी गैर-विधिक आधार तय करने के उद्देश्य

से मुकदमे की तारीख के बारे में किसी भी भ्रमित मन की स्थिति में थे। गैर-उपयोगकर्ता ट्रायल कोर्ट का दृष्टिकोण साथ ही प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा वाद क्रमांक 5 का निर्णय करते हुए इसे किसी भी प्रकार से गलत या दोषपूर्ण नहीं माना जा सकता है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित निर्णयों को सही ठहराने का प्रयास सराहना योग्य नहीं है और दोनों निर्णय कानून की नजर में टिकाऊ हैं। जिस तरह से दोनों निचली अदालतों ने गैर-उपयोगकर्ता को बेदखल करने के आधार से संबंधित मुद्दे संख्या 5 से निपटने के दौरान तथ्य निष्कर्ष दर्ज किए हैं, यह नहीं माना जा सकता है कि निचली अदालतों ने अवैध, मनमाने ढंग से और विकृत तरीके से काम किया है, बल्कि दूसरी ओर, मुद्दा क्रमांक 5 का निर्णय करते समय पारित बेदखली की डिक्री और निचली अदालतों के निष्कर्ष पुष्टि किए जाने योग्य हैं और टिकाऊ हैं। तदनुसार, अपीलार्थीगण के विरुद्ध विधि संख्या 1 से 3 के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

42. .अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने गौरी लाल (सुप्रा.) और पूरन मल (सुप्रा.) के मामले में पारित निर्णयों पर भरोसा किया है। दोनों निर्णयों में, इस न्यायालय की एकलपीठ ने कहा है कि 1950 के अधिनियम की धारा 13 (1) (ञ) के प्रावधानों में इंगित सामग्री को अनिवार्य रूप से सिद्ध करने की आवश्यकता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि किराए के आधार का गैर-उपयोगकर्ता "वाद की तारीख से तुरंत पहले" सिद्ध किया जाना चाहिए।

43. इन निर्णयों में निर्धारित कानून के प्रस्ताव से कोई असहमति नहीं है। दोनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से माना है कि धारा 13 (1) (ञ) के तहत सिद्ध होने के लिए आवश्यक सभी तत्व वर्तमान मामले में स्थापित हैं। संशोधित वाद की स्थापना से पहले अर्थात जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक छह माह की अवधि ली गई है। दोनों न्यायालयों द्वारा समवर्ती रूप से यह देखा गया है कि इस अवधि के दौरान किराए की दुकान बंद रही और प्रत्यर्थी यह सिद्ध नहीं कर पाए हैं कि इस अवधि के दौरान कोई व्यवसाय किया गया था। वादी ने खुद को गवाह के रूप में प्रस्तुत किया और विद्युत विभाग के सहायक अभियंता को पीडब्लू 2 के रूप में भी प्रस्तुत किया, जिन्होंने मीटर रीडिंग रजिस्टर के बल पर अपने साक्ष्य प्रस्तुत किए। किराए की दुकान में लगे बिजली मीटर के अनुसार मीटर रीडिंग 9.4.1993 को 160 यूनिट और उसके बाद 12.4.1996 को 370 यूनिट नोट की गई थी। इस दौरान दुकान पर ताला लगा मिलने के कारण मीटर रीडिंग नहीं पाई गई। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने पीडब्लू.2 के साक्ष्य पर महाभियोग लगाने की मांग की, इस

कारण से कि मीटर रीडिंग रजिस्टर में, प्रश्न में दुकान अग्रवाल बूट हाउस के नाम पर दिखाई गई है, लेकिन पीडब्लू 2 की जिरह में ऐसा कोई तथ्यात्मक विवाद नहीं उठाया गया था। प्रत्यर्थीगण ने प्रदर्श 1 से प्रदर्श 236 तक बिल और वाउचर प्रस्तुत किए हैं। ये वे बिल हैं जिनके माध्यम से प्रत्यर्थीगण ने एनके हथकरघा के नाम पर कुछ मदें खरीदीं। ये बिल जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक की अवधि से संबंधित नहीं हैं। कुछ बिल पूर्ववर्ती अवधि के हैं और कुछ बाद की अवधि के हैं। प्रत्यर्थी स्वयं साक्ष्य में स्वीकार करते हैं कि जूता बेचने का व्यवसाय जो पहले चल रहा था, वह बंद हो गया था और दुकान का उपयोग कभी-कभी पटाखे बेचने और भारतीय त्योहारों के अन्य सामयिक व्यवसाय के लिए किया जा रहा था। प्रत्यर्थी यह भी स्वीकार करते हैं कि किराए की दुकान में पटाखे बेचने के लिए, अधिकारियों द्वारा समय-समय पर लाइसेंस जारी किए गए थे। प्रत्यर्थीगण ने न तो कोई लाइसेंस प्रस्तुत किया है और न ही उस अवधि का कोई बिजली खपत बिल प्रस्तुत किया है। एनके हैंडलूम के नाम पर कुछ वस्तुओं को खरीदने के लिए आगे के बिल और वाउचर दुकान में व्यवसाय करने का प्रमाण नहीं है। इसलिए, रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर, दोनों न्यायालयों ने प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला है कि दुकान 8.7.1994 को संशोधित वाद दायर करने से पहले छह माह की अवधि के लिए लगातार बंद पड़ी थी। इस तरह के तथ्य निष्कर्ष साक्ष्य की सराहना/पुनः मूल्यांकन पर आधारित होते हैं और इसे रिकॉर्ड पर कोई ठोस सामग्री नहीं होने या विकृति से ग्रस्त होने के लिए पारित नहीं किया जा सकता है।

44. अपीलकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया है कि वादी ने यह दलील नहीं दी है कि दुकान पिछले छह महीने से लगातार "बिना किसी उचित कारण के" बंद थी। तर्क के विपरीत, उत्तरदाताओं के वकील का कहना है कि अपीलकर्ताओं ने अपने लिखित बयान में तर्क दिया है कि दुकान कभी बंद नहीं हुई थी और इसका उपयोग व्यवसाय करने के लिए किया जा रहा था। यह ऐसा मामला नहीं है, जहां प्रतिवादियों ने दलील दी है कि दुकान किसी कारण से लगातार छह महीने तक बंद रही। उन्होंने बताया कि प्रतिवादियों की दलीलों की ऐसी पृष्ठभूमि में, "उचित कारण के बिना" का मुद्दा दलीलों का एक निहित और आंतरिक हिस्सा है और साबित होता है कि यह विवादित नहीं है।

45. प्रत्यर्थीगण ने सेवा राम बनाम मनोज कुमार [(1994) 1 डब्लूएलसी 45] के निर्णय पर भरोसा किया है। इस निर्णय में, यह माना गया कि 1950 के अधिनियम की धारा 13

(1) (ञ) के आधार पर बेदखली की मांग करने वाले मकान मालिक की दलीलों की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि प्रत्यर्थी लगातार छह माह की अवधि के लिए सूट परिसर का उपयोग नहीं कर रहे हैं। मुकदमे की तारीख या कहें कि निर्धारित अवधि के लिए किरायेदार द्वारा गैर-उपयोगकर्ता, वादी के मामले का एकमात्र हिस्सा है। यह क़ानून द्वारा अनुमत बचाव का हिस्सा है कि ऐसे गैर-उपयोगकर्ता के बावजूद, यदि प्रत्यर्थीगण के पास गैर-उपयोगकर्ता के लिए उचित कारण है, तो किरायेदार को बेदखल नहीं किया जा सकता है।

46. इसलिए, वर्तमान मामले में, जहां प्रत्यर्थीगण ने कोई बचाव नहीं किया है कि किसी उचित कारण के कारण, किराए के परिसर को बंद कर दिया गया था, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क की सराहना नहीं की जा सकती है। इसके अलावा निचली अदालतों ने देखा है कि वादी ने अनुरोध किया है कि किराए की दुकान में कोई व्यवसाय नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार, वादी का मामला यह है कि दुकान बंद है और प्रत्यर्थी ने बचाव में कहा कि दुकान बंद नहीं है बं, का घटक बिना किसी उचित कारण के बंद रहा कारण, तथ्यों की ऐसी पृष्ठभूमि में बिल्कुल भी उत्पन्न नहीं होता है और दोनों निचली अदालतों ने गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर बेदखली के लिए डिक्री पारित करने में कोई विकृति नहीं की है।

47. जहां तक बोझ को स्वीकार करने का प्रश्न है, किराए के परिसर का उपयोग न करने के आधार को सिद्ध करने का प्रारंभिक बोझ वादी-मकान मालिक पर है। वादी ने अपने स्वयं के साक्ष्य के साथ-साथ सहायक अभियंता, ओम प्रकाश (पीडब्लू.2) के साक्ष्य प्रस्तुत करके, प्रथम दृष्टया, यह दिखाने के अपने दायित्व से मुक्ति पा ली है कि दुकान बंद है क्योंकि उस अवधि के दौरान न तो कोई मीटर रीडिंग नोट की गई थी और न ही कोई अन्य व्यापारिक गतिविधियाँ चलायी गयीं। यह सिद्ध करने की जिम्मेदारी प्रत्यर्थीगण पर आ गई कि उस अवधि के दौरान दुकान बंद नहीं हुई थी और किराए की दुकान में व्यवसाय चल रहा था।

48. साक्ष्य के बोझ और गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर प्रत्यर्थी-किरायेदारों पर आने वाली जिम्मेदारी के संबंध में विधिक स्थिति अच्छी तरह से स्पष्ट है। राम दास बनाम दविंदर [(2004) 3 एससीसी 684], के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि बेदखली के लिए आधार बनाना मकान मालिक का काम है और साक्ष्य का बोझ मकान मालिक पर है। हालाँकि, जिम्मेदारी बदलती रहती है। एक बार जब मकान मालिक यह

दिखाने में सक्षम हो जाता है कि किराएदार परिसर का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा है जिसके लिए उन्हें किराए पर दिया गया था और किरायेदार ने किराएदार परिसर में ऐसी गतिविधियां बंद कर दी हैं, जिनके लिए किरायेदार को वास्तव में परिसर में रहने की आवश्यकता होती, तो बेदखली का आधार बनता है। परिसर पर कब्जा बंद करने के लिए उचित कारण की उपलब्धता, जाहिर तौर पर किरायेदार के ज्ञान के भीतर और कभी-कभी विशेष ज्ञान के भीतर होगी। एक बार साक्ष्य द्वारा परिसर को किरायेदार के कब्जे में नहीं दिखाया गया है, तो मकान मालिक की यह दलील कि ऐसा गैर-उपयोगकर्ता बिना किसी उचित कारण वहाँ है, किरायेदार को किरायेदार परिसर पर कब्जा बंद करने के लिए उचित कारण का प्रभाव डालता है और उस परिसर की उपलब्धता को सिद्ध करने और उस पर दलील देने के लिए नोटिस देने का वैध कारण बनता है।

49. वी. सुमतिबेन मगनलाल मनानी बनाम उत्तमचंद काशीप्रसाद शाह [(2011) 7 एससीसी 328], के मामले में पैरा 22 में, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि "हालांकि, वाद परिसर के गैर-उपयोगकर्ता के मुद्दे पर सबसे ठोस साक्ष्य बिजली बिल के रूप में आता है।" यह देखा गया कि यदि बिजली के बिलों से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले में बिजली की कोई खपत नहीं हुई है, तो प्रत्यर्थीगण ने साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि उनके पिता ने बिजली बिल का भुगतान किया था और उनके पास बिजली के बिल हैं, लेकिन कोई भी बिजली बिल रिकार्ड पर प्रस्तुत नहीं किया गया है।

50. प्रेम प्रकाश @ पूरन चंद बनाम किराया अपीलीय न्यायाधिकरण, अलवर [2015 (3) डब्ल्यूएलएन 52] के मामले में, इस उच्च न्यायालय की एकलपीठ ने देखा कि किरायेदार के लिए गैर-उपयोगकर्ता के आधार पर बचाव करने का सबसे अच्छा साक्ष्य खाता किताबें, खरीद के बिल और बिक्री हो सकता था जिससे यह सिद्ध हो जाता कि वह किराए के परिसर का उपयोग कर रहा था।

51. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण ने यह दिखाने के लिए बिल प्रस्तुत नहीं किया है कि किराए की दुकान में व्यवसाय चल रहा था। सबसे पहले, बिल जनवरी, 1994 से जून, 1994 तक की अवधि के नहीं हैं और दूसरे, रिकॉर्ड पर प्रस्तुत बिल कुछ वस्तुएँ खरीदने के लिए एन.के. हैंडलूम के नाम पर हैं। ये दिखाने के लिए बिल नहीं हैं कि किराए की दुकान में कोई कारोबार चल रहा था। यदि किराए की दुकान में पटाखे बेचने का व्यवसाय शुरू किया गया था, तो प्रत्यर्थीगण ने कोई लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया है।

52. गोपाल कृष्णजी केतकर बनाम मोहम्मद हाजी लतीफ [एआईआर (1968) एससी 1413], के एक प्रसिद्ध निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि किसी पक्ष के पास सर्वोत्तम साक्ष्य हैं, तो विवाद में चल रहे मुद्दे को रोकने से उनके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकलेगा, भले ही साक्ष्य देने की जिम्मेदारी उन पर नहीं है।

53. ऐसी परिस्थितियों में, यह सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी केवल प्रत्यर्थीगण पर डाल दी गई है कि किराए की दुकान बंद नहीं थी और उसमें व्यवसाय चल रहा था। प्रत्यर्थीगण के साक्ष्य के अभाव में, निचली अदालतों को प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने का अधिकार है, विशेष रूप से जहां वादी और उसके गवाह-बिजली विभाग के सहायक अभियंता ने सिद्ध कर दिया है कि दुकान बंद थी। इस प्रकार, विधि संख्या 4 के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर नकारात्मक और अपीलार्थीगण के विरुद्ध दिया गया है।

54. इसलिए, विधि संख्या 1 से 5 के सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक दिया गया है और अपीलार्थीगण के विरुद्ध निर्णय लिया गया है।

55. उमरखान बनाम बिस्मिल्लाबी शेख और अन्य [(2011) 9 एससीसी 684] में रिपोर्ट किया गया, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय कि यदि कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न पर द्वितीय अपील स्वीकार की जाती है, तो द्वितीय अपील की अंतिम सुनवाई करते समय, न्यायालय कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न को फिर से तैयार कर सकती है या नए महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार कर सकती है या यह भी मान सकता है कि पहले से तैयार किए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के दायरे में नहीं आते हैं, लेकिन उच्च न्यायालय कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के गठन/शामिल हुए बिना धारा 100 सीपीसी के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।

56. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने गुरनाम सिंह बनाम लेहना सिंह [(2019) 7 एससीसी 641] और सी. डोड्डानारायण रेड्डी बनाम सी. जयारामा रेड्डी [(2020) 4 एससीसी 659] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों पर भरोसा जताया है। उन्होंने इन निर्णयों की ताकत को ध्यान मे रखे जाने का तर्क दिया है कि द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य वर्जित नहीं है और तथ्यात्मक निष्कर्षों में विकृति का विश्लेषण करने के लिए उच्च न्यायालय सीपीसी की धारा 100 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों के मामले में भी साक्ष्य की फिर से पुष्टि कर सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के प्रस्ताव पर कोई असहमति नहीं

है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, नीचे दिए गए दो न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए तथ्य निष्कर्ष विकृत नहीं पाए गए हैं, न ही गलत पढ़ने/साक्ष्यों को न पढ़ने पर आधारित हैं, न ही बिना साक्ष्यों पर आधारित हैं, न ही आक्षेपित निर्णय ऐसी प्रकृति के हैं कि कोई न्यायिक रूप से कार्य करने वाले न्यायाधीश तर्कसंगत रूप से पहुंच सकते थे, इसलिए, तथ्य निष्कर्षों में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

57. किराए की दुकान का उपयोग न करने का मुद्दा एक तथ्यात्मक मुद्दा है और दोनों न्यायालयों ने तथ्य निष्कर्षों को दर्ज किया है कि संशोधित मुकदमा दायर करने की तारीख से पहले छह माह की लगातार अवधि के लिए विचाराधीन दुकान बंद रही और इसका उपयोग नहीं किया गया। दो न्यायालयों के ऐसे समवर्ती तथ्य निष्कर्ष में विकृति, साक्ष्य की किसी अपर्याप्तता के कारण या साक्ष्य को अलग-अलग तरीके से पढ़कर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। दामोदर लाल बनाम सोहन देवी एवं अन्य [(2016) 3 एससीसी 78] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नानुसार प्रेक्षित किया गया:-

"पैरा 12...भले ही तथ्य का पता लगाना गलत हो, यह अपने आप में कानून का प्रश्न नहीं बनेगा। गलत निष्कर्ष साक्ष्यों के पूर्ण गलत अध्ययन से उत्पन्न होना चाहिए या यह केवल अनुमानों और अनुमानों पर आधारित होना चाहिए। विकृति पर सबसे सुरक्षित दृष्टिकोण तथ्यों पर उचित व्यक्ति के अनुमान पर क्लासिक दृष्टिकोण है। उनके लिए, यदि नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा दिए गए साक्ष्य में तथ्यों पर निष्कर्ष संभव है, तो कोई विकृति नहीं है।

58. नवनीतम्मल बनाम अर्जुन चेट्टी [(1996) 6 एससीसी 166] मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

""धारा 100 सीपीसी के तहत उच्च न्यायालय द्वारा निचली अदालतों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप से तब तक बचा जाना चाहिए जब तक कि बाध्यकारी कारणों से इसकी आवश्यकता न हो। किसी भी मामले में उच्च न्यायालय से केवल निचली अदालतों के निष्कर्षों को बदलने के लिए साक्ष्यों की फिर से सराहना करने की उम्मीद नहीं की जाती है। ....यह मानते हुए भी कि उसी साक्ष्य की पुनः सराहना पर एक और दृष्टिकोण संभव है, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया जाना चाहिए था क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम अपीलीय अदालत का दृष्टिकोण बिना किसी सामग्री पर आधारित था।"

59. इसी तरह, त्यागराजन बनाम श्री वेणुगोपालस्वामी बी.कोइल [(2004) 5 एससीसी

762] में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार कहा:-

"25. वर्तमान मामले में, निचली अपीलीय साक्ष्यों को पर्याप्त रूप से समझा और एक निष्कर्ष पर पहुंचे। निष्कर्ष यह है अपीलार्थीगण के मुकदमे का निर्णय सुनाया जाना था और अपीलार्थीगण प्रार्थना के अनुसार राहत के पात्र हैं। यह मानते हुए भी कि उसी साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन पर एक और दृष्टिकोण संभव है, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा लिया गया दृष्टिकोण बिना किसी सामग्री पर आधारित था।

26. उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को सामान्य कहना उचित नहीं था। विधि के संरक्षक न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे विधायिका के स्पष्ट इरादे को आगे बढ़ाएं और उसे बाहर करके उसे निराश न करें। इस न्यायालय ने निर्णयों की श्रृंखला में यह माना कि जहां निचली अपीलीय अदालत द्वारा तथ्य के निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित होते हैं, वहीं द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय साक्ष्य की पुनर्मूल्यांकन पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को केवल इस आधार पर प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है कि एक और दृष्टिकोण संभव था।

60. माननीय उच्चतम न्यायालय ने कोंडीबा दगडु कदम बनाम सावित्रीबाई सोपान गुजर [(1999) 3 एससीसी 722] के मामले के तहत यह अभिनिर्धारित किया है:-

"यह उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है कि वह उन आधारों की जांच करे जिन पर अंतिम तथ्य न्यायालय, प्रथम अपीलीय अदालत, द्वारा निष्कर्ष निकाले गए थे। यह सच है कि निचली अपीलीय अदालत को आमतौर पर विश्वसनीयता के संबंध में ट्रायल कोर्ट द्वारा स्वीकार किए गए गवाहों को अपास्त नहीं करना चाहिए, लेकिन यहां तक कि जहां उसने ट्रायल कोर्ट द्वारा स्वीकार किए गए गवाहों को अपास्त कर दिया है, वहीं द्वितीय अपील में हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है जब ऐसा पाया जाता है कि अपीलीय अदालत ने ऐसा करने के लिए संतोषजनक कारण बताए हैं। ऐसे मामले में जहां परिस्थितियों के एक सेट से दो निष्कर्ष संभव हैं।

"निचली अपीलीय अदालत द्वारा निकाला गया मामला द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी है। किसी अन्य दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं है। उच्च न्यायालय अपनी राय को प्रथम अपीलीय अदालत के स्थान पर तब तक नहीं रख सकता जब तक कि यह न पाया जाए कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्ष गलत थे और लागू कानून के अनिवार्य प्रावधानों या उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई

घोषणाओं के आधार पर उसकी निर्धारित स्थिति के विपरीत थे या अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित थे या बिना साक्ष्य के आए थे।"

61. संतोष हजारी बनाम पुरूषोत्तम तिवारी [(2001) 3 एससीसी 179] मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:-

"कानून का कोई भी मुद्दा जो किसी भी दो राय को स्वीकार नहीं करता है, वह कानून का प्रस्ताव हो सकता है, लेकिन कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं हो सकता है। "पर्याप्त" होने के लिए, कानून का प्रश्न बहस योग्य होना चाहिए, न कि उसे पहले देश के कानून द्वारा तय किया गया हो या बाध्यकारी पूर्व उदाहरण हो, और यदि किसी भी तरह से उत्तर दिया जाता है, तो मामले के निर्णय पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव होना चाहिए, जहां तक इससे पहले के पक्षों के अधिकारों का प्रश्न है। "मामले में शामिल" कानून का प्रश्न होने के लिए यह आवश्यक होना चाहिए मामले के न्यायसंगत और उचित निर्णय के लिए कानून के उस प्रश्न को तय करें। उच्च न्यायालय के समक्ष पहली बार उठाया गया एक बिल्कुल नया मुद्दा मामले में शामिल प्रश्न नहीं है जब तक कि यह मामले की जड़ तक नहीं जाता है। इसलिए, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि कानून का प्रश्न महत्वपूर्ण है और मामले में शामिल है या नहीं; सर्वोपरि समग्र विचार सभी चरणों में न्याय करने के अपरिहार्य दायित्व के बीच न्यायिक संतुलन बनाने की आवश्यकता है और किसी भी मामले की अवधि को लम्बा खींचने से बचने की अनिवार्य आवश्यकता भी।"

62. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए सी. डोड्डानारायण रेड्डी (सुप्रा.) के निर्णय में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम शिव दयाल [(2019) 8 एससीसी 637] के निर्णय पर भरोसा किया है और इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"16. जब द्वितीय अपील में तथ्य के किसी समवर्ती निष्कर्ष पर प्रश्न उठाया जाता है, तो अपीलार्थीगण को यह इंगित करने का अधिकार है कि यह कानून में अनुचित है क्योंकि इसे दलीलों से अलग दर्ज किया गया था या यह बिना किसी साक्ष्य पर आधारित था या यह सामग्री दस्तावेजी साक्ष्य की गलत व्याख्या पर आधारित था या यह कानून के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध दर्ज किया गया था और अंत में, निर्णय वह है जिस तक न्यायिक रूप से कार्य करने वाला कोई भी न्यायमूर्ति तर्कसंगत रूप से नहीं पहुंच सका।"

63. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, अपीलार्थीगण के विरुद्ध कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। वर्तमान मामले में कानून का कोई अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न न तो सुझाया गया है और न ही उठा है। यह न्यायालय किराए की दुकान का उपयोग न करने के आधार पर बेदखली का आदेश पारित करने के लिए नीचे की दो न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है। तदनुसार, द्वितीय अपील गुणहीन है और इसे अपास्त किया जाता है। खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

64. चूंकि किराए की दुकान वर्ष 1948 से अपीलार्थीगण-प्रत्यर्थीगण के पूर्वजों के समय से किरायेदारी में है, इसलिए किरायेदारी की लंबी अवधि को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय अपीलार्थीगण को खाली करने और शांतिपूर्ण तरीके से सौंपने के लिए तीन माह का समय देना उचित और उचित मानता है। प्रत्यर्थीगण-मकान मालिक को किराए की दुकान का कब्ज़ा बकाया किराया/मकान लाभ, यदि कोई हो, के भुगतान और कब्ज़ा सौंपने तक भविष्य के प्रतिमाह लाभ के भुगतान के अधीन है।

65. कोई अन्य लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निपटान कर दिया गया है।

66. नीचे दिए गए दोनों न्यायालयों का रिकॉर्ड तुरंत वापस भेजा जाए।

(सुदेश बंसल), न्यायमूर्ति

NITIN

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म राजभाषा सेवा संस्थान द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।